तो अन्य मार्गपर जानेसे अटक जाता है। चारों ओर बेकार कोशिश करे तो शांति कहाँ-से मिले? जो चैतन्य ज्ञायक है उसमें ही शांति भरी है। बाहर तो है नहीं।

मुमुक्षु :- गुरुदेवने तो स्पष्ट किया है लेकिन आज आप प्रत्यक्ष उस स्पष्टता को अधिक समझाकर हमपर अनन्त-अनन्त उपकार कर रहे हो।

समाधान :- आप सब पूछतो हो इसलिये निकलता है।

मुमुक्षु :- अन्तर के प्रश्न माताजी! अनुभवी पुरुष के सिवा किसे ख्याल आये?

समाधान :- गुरुदेवने बहुत स्पष्ट किया है। कहीं शंका रहे नहीं इस तरह मार्ग को स्पष्ट किया है।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा-सी.डी.-३ C

समाधान :- जो प्रतिज्ञा ली है उसमें दृढ़ता रखनी चाहिये। लेकिन वह आत्मलक्ष्यपूर्वक होनी चाहिये कि आत्मा कैसे समझ में आये? आत्मा कैसे प्रगट हो? ऐसी भावना अन्दर होनी चाहिये। आत्मार्थे ली हुई प्रतिज्ञा, आत्मा के प्रयोजनपूर्वक ली हुई प्रतिज्ञा, जो प्रतिज्ञा ली हो उसमें दृढ़ता रखनी चाहिये। प्रतिज्ञाभंगसे तो नुकसान ही होता है न। कुछ आदरणीय नहीं है, एक आत्मा ही आदरणीय है। आत्मा ही आदरणीय है, उसे ग्रहण करना चाहिये। बाकी मात्र क्रिया के आग्रहसे (प्रतिज्ञा) ली हो औरा आत्मा का कोई प्रयोजन नहीं हो, मैं इतने उपवास करुँ और ये करुँ, ऐसा हो तो उसमें अपनी भावना कितनी दृढ़ रहती है वह समझना चाहिये। समझपूर्वक की प्रतिज्ञा होनी चाहिये।

आत्मा के सिवा कुछ आदरणीय नहीं है, सब छोड़ने जैसा है। उसमें प्रतिज्ञाभंग हो तो नुकसान होता है। आत्मा का प्रयोजन पहले साधना है, आत्मा कैसे ग्रहण हो? आत्मा ज्ञायकधारा ज्ञायक कैसे प्रगट हो, फिर ज्ञायक को पहचानकर अन्दर दृढ़ निश्चय होना चाहिये। निश्चय होकर अन्दर लीनता बढ़े, उसके साथ शुभभाव आये, उसके साथ प्रतिज्ञा आती है। ऐसी प्रतिज्ञा, सम्यक् रीतसे प्रतिज्ञा तो सम्यग्दर्शन होने के बाद होती है। प्रतिज्ञा सहजरूप होनी चाहिये। हठाग्रहसे ली हुई प्रतिज्ञा (यथार्थ नहीं है)। छोड़ने जैसा तो सबकुछ है, लेकिन खुद को उतनी तैयारी रखनी चाहिये।

दूसरा, खुद की भावना कितनी है वह खुद को समझ लेना। आत्मार्थ का प्रयोजन होना चाहिये, उसका एक अर्थ है। सबकुछ छोड़ने जैसा है। उसमें कुछ रखने जैसा नहीं है। एक आत्मा में ही रहने जैसा है ऐसी प्रतिज्ञा होनी चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये।

मुमुक्षु :– वैसी प्रतिज्ञा लेने जैसी है।

समाधान :– ऐसी प्रतिज्ञा–आत्मा में ही रहने जैसा है, और कहीं भी जुड़ने जैसा नहीं है। फिर खुद का भाव कितना आगे बढ़ता है वह खुद को देखना है।

मुमुक्षु :– तो फिर जबतक सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है तबतक प्रतिज्ञाभंग ही रहा है?

समाधान :– प्रतिज्ञा सच्ची नहीं है। सच्ची प्रतिज्ञा ही नहीं है, उसमें सब भंग ही हो रहा है। व्यवहारसे प्रतिज्ञा ली हो, शुभभावरूपसे, उसमें किसीको तो मात्र क्रिया ऊपर ध्यान होता है कि इतनी क्रिया की और इतने उपवास किये, सब गिनती में होता है, इतनी सामायिक की, अन्दर भाव कैसे रहते हैं उसका भी ध्यान नहीं होता। शुभभाव हो तो–तो पुण्य भी बँधे, शुभभाव भी नहीं होते। मात्र बाह्यसे क्रिया करते हैं। अन्दर शुभभाव हो तो पुण्यबन्ध होता है। वह व्यवहारसे प्रतिज्ञा कही जाती है। सच्ची प्रतिज्ञा तो सम्यग्दर्शन होने के बाद होती है, सच्ची प्रतिज्ञा तो। प्रतिज्ञा ही सच्ची नहीं है, वहाँ क्या उसका भँग और क्या दृढ़ता वह सब व्यवहार में लागू पड़ता है।

मुमुक्षु :– प्रतिज्ञा नहीं है तो उसका प्रायश्चित् भी क्या? और दूसरा कुछ सत्यरूप हो नहीं सकता।

समाधान :– सत्यरूपसे कुछ नहीं है, सब व्यवहार में। व्यवहार भी कैसा होता है उतना, मात्र क्रिया होती है। समझने जैसा होता है। शुभभावरूप हो तो भी ठीक है, (लेकिन) शुभभाव भी नहीं होते, मात्र क्रिया होती है।

मुमुक्षु :– बाह्य क्रिया की ही मुख्यता होती है।

समाधान :– बाह्य क्रिया की ही मुख्यता होती है।

मुमुक्षु :– माताजी ! एक और प्रश्न है। अनुभव के पहले सविकल्प निर्णय का सत्य स्वरूप क्या है? यह प्रश्न इसलिये उत्पन्न हुआ कि सविकल्प निर्णय पहले होता है। सविकल्प निर्णय में, मैं ज्ञायक ही हूँ, रुचिपूर्वक मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा ग्रहण किया है और इसके सिवा अन्य सबसे रुचि छोड़ दी है। फिर भी मिथ्यात्व तो गया नहीं है, मिथ्यात्व गया नहीं है इसलिये एकत्व तो प्रतिसमय होते रहता है, तो फिर वह निर्णय किसप्रकार का? अभिप्रायसे छूटा, निर्णय में अभिप्रायसे छूटा वह कैसे रहा?

समाधान :– उसने मात्र विचारसे नक्की किया है। विचारसे, विकल्पसे निर्णय किया है कि यह ज्ञायक है वह मैं हूँ, दूसरा कुछ मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा विचारकर निर्णय किया है। लेकिन वह निर्णय सच्चा कब कहलाये? कि उसरूप परिणति (हो तब)। ज्ञायक की ज्ञाताधारा जो प्रगट होनी चाहिये (वह) परिणति नहीं है, वह परिणति वास्तविकरूपसे प्रगट हो और एकत्वबुद्धि टूटकर भेदज्ञान हो तो ही सच्चा कहने में आता है। सम्यक् संज्ञा तो ही मिलती है। तो ही सच्ची परिणति है। जबतक परिणति नहीं बदली तबतक उसे सम्यक्ता कह नहीं सकते। लेकिन उसने ज्ञानसे और विचारसे निर्णय किया है। लेकिन निर्णय करने के बाद फिर

आगे जाना है। दर्शनमोह मन्द हुआ है।

मुमुक्षु :- दर्शनमोह मन्द हुआ है इतना ही। क्योंकि विचार तो ऐसा आया कि विकल्पात्मक निर्णय सच्चा हो तो अभिप्राय छूट जाये कि सुख मेरे में ही है, अन्य कहीं भी नहीं है। लेकिन वह भी निश्चयसे तो वस्तुस्थिति नहीं है। क्योंकि मिथ्यात्व तो खड़ा है, प्रतिसमय एकत्व तो होता ही रहता है।

समाधान :- एकत्व होता ही रहता है। इसलिये उसने विचारसे नक्की किया। दर्शनमोह मन्द हुआ है। अन्दरसे विचारसे नक्की किया कि यह ज्ञायक ही मैं हूँ और यह विभावभाव शुभाशुभ भाव मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे विचारसे नक्की किया है। ये सच्चे देव-गुरु। देव ऐसे होते हैं, गुरु ऐसे होते हैं, शास्त्र ऐसे होते हैं। ज्ञायक, मेरा ज्ञायक है वह सर्वसे भिन्न है। विचारसे नक्की किया है लेकिन एकत्वबुद्धि हो रही है। इसलिये वास्तव में अन्दरसे उसकी परिणति भिन्न नहीं हुई है तबतक विचारसे नक्की किया है। अर्थात् दर्शनमोह की मन्दता है। वास्तविक रूपसे जब सम्यक् परिणति हो तब ही मिथ्यात्व छूटा कहने में आता है।

मुमुक्षु :- उसमें यह समझना कि शास्त्र द्वारा, सत्शास्त्र अथवा गुरुगमसे वस्तु का स्वरूप विचारकर इतना नक्की किया कि वस्तु के अनेकान्त स्वरूप पूर्वक ज्ञायक ही मेरा स्वरूप है, ऐसा एक निर्णय किया। बाकी अभिप्रायमेंसे कुछ त्याग हुआ है ऐसा तो निश्चयसे नहीं बना।

समाधान :- त्याग नहीं हुआ है, विचारसे नक्की किया है। रुचि उस ओर गई है और विचारसे नक्की किया है। बाकी परिणति पलटी नहीं है तबतक वहीं के वहीं खड़ा है। एकत्वबुद्धि जबतक है, उसके वेदन में एकत्वबुद्धि हो रही है। तबतक वह वैसे ही है। अब विचारसे नक्की करके आगे जाने का प्रयत्न करे तो उसे व्यवहारसे कारण कहने में आता है, जो उसने नक्की किया वह।

मुमुक्षु :- माताजी ! नक्की किया ऐसा भी कैसे कहें? जब एकत्वबुद्धि प्रतिसमय चल रही है तो.. चारित्रदोष हो तो-तो ठीक है, लेकिन अभिप्राय का दोष भी साथ में तो है ही, तो फिर उसने नक्की क्या किया? ये तो अन्दरसे एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इसमें नक्की करने जैसा क्या आया?

समाधान :- विचारसे नक्की किया है। वास्तविक तो अन्दर हो तभी कह सकते हैं। जिस समय अन्दर सम्यक् परिणति हो तब मिथ्यात्व गया ऐसा कह सकते हैं। ये सब तो बीचवाली भावना, निर्णय आदि (कहते हैं)। क्योंकि वह एकदम तो हो नहीं जाता। इसलिये उसे प्रारंभ में उसकी पात्रता में विचार आदि आते हैं। विचारसे नक्की करे। सब आता है, लेकिन वास्वकितासे तो परिणति पलटे तभी उसे सच्चा कहने में आता है। तबतक सच्चा कह सकते नहीं।

मुमुक्षु :- एक जीव तीव्र मिथ्यादृष्टि है, एक जीवने ऐसा निर्णय किया है तो उसका

कितना मूल्य आँकना ?

समाधान :– क्या? मिथ्यादृष्टि तीव्र है?

मुमुक्षु :– वस्तु का स्वरूप समझता नहीं है और एकने समझकर ऐसा निर्णय किया है। लेकिन उस निर्णय को निर्णयरूप कैसे कहना?

समाधान :– हक़ीकत में वस्तुस्थितिसे कह नहीं सकते। उसे व्यवहारसे कहने में आता है कि है। व्यवहार, लेकिन वह निश्चयपूर्वक का व्यवहार नहीं है। व्यवहार है। उसकी जिज्ञासा की भूमिका में उसने वह नक्की किया है। अन्य की तुलना में वह जिज्ञासा, भावना और विचारसे यथार्थ स्वरूप को विचारसे जानता है। इतना उसे कह सकते हैं।

मुमुक्षु :– रुचि का पलटा कुछ काम नहीं करता?

समाधान :– रुचि का पलटा काम करता है। भावना सच्ची है इसलिये। करता है लेकिन फिर पुरुषार्थ करना रहता है। रुचि में अटक जाये तो आगे बढ़ नहीं सकता, लेकिन उसके बाद विशेष करना बाकी रहता है। मैं ज्ञायक ही हूँ, ये शुभाशुभ भाव मैं नहीं हूँ, ऐसा नक्की करे फिर उसे प्रयत्न करना बाकी रहता है। विशेष प्रयत्न आगे करे तो होता है, जबतक नहीं हो तबतक विचार करे, आत्मा क्या है, द्रव्य–गुण–पर्याय क्या है, देव–गुरु–शास्त्र की भावना करे।

मुमुक्षु :– परिणति कैसे पलटनी?

समाधान :– खुद की तैयारी हो तो अन्दरसे उसे मालूम पड़े कि कैसा करना? गुरुदेवने मार्ग तो बताया है। निर्णय खुदने किया हो। परिणति कैसे पलटनी? (वह तो) खुद अन्दरसे तैयारी करे तो परिणति पलटती है। प्रतिक्षण स्वयं भिन्न होने का प्रयत्न करे तो होता है। उसका बारंबार अभ्यास करे तो होता है। उतनी लगनी और जिज्ञासा अन्दरसे हुई हो कि मैंने जो नक्की किया है उस अनुसार मेरा कार्य अन्दर परिणति में क्यों आता नहीं? उसके लिये अन्दर निरंतर प्रयत्न करे तो होता है।

प्रश्न :– अनुभव के पहले यथार्थ होना चाहिये। और यथार्थ निर्णय को धारणारूप कहेंगे या और कुछ कहेंगे?

समाधान :– विचारसे नक्की किया है।

प्रश्न :– ऐसा वस्तु का द्रव्य–गुण–पर्यायात्मक स्वरूप, निश्चय–व्यवहार वह सब तो विचारपूर्वक नक्की किया है। लेकिन आगे तो कुछ..

समाधान :– आगे तो वह प्रतिक्षण भिन्न होने का प्रयत्न करे तो होता है। बाकी प्रतिक्षण भिन्न होने का प्रयत्न नहीं हो तबतक विचार के निर्णय को दृढ़ किया करे। बाकी शास्त्र स्वाध्याय, विचार के निर्णय को दृढ़ करता रहे। बाकी उसका कार्य तो वह आना चाहिये कि उसकी परिणति भिन्न पड़े, तो उसको कारण कह सकते हैं। परिणति भिन्न पड़े तो। लेकिन यदि उसकी गहरी रुचि और भावना हो तो फिर वह उसका पुरुषार्थ किये बिना रहता नहीं।

जिस समय प्रकाश (होता है) उसी समय अंधकार जाता है। उसी क्षण। प्रकाश यानी बाह्य प्रकाश नहीं, अन्दर ज्ञायक की धारा जो अन्दरसे स्वानुभूति (प्रगट हो), अथवा ज्ञायक की धारा प्रगट हो उसी क्षण अंधकार का नाश होता है। स्वानुभूति हुई उसी क्षण भिन्न पड़ जाता है। उसका अभ्यास तो पहले होता है। प्रतिक्षण भिन्न पड़ने का प्रयत्न करता है।

मुमुक्षु :- निश्चयनय का पक्ष भी कभी आया नहीं, तो निश्चयनय का पक्ष यानी निश्चयनय के विषयभूत आत्मा का-ज्ञायक का निर्णय?

समाधान :- मैं यह ज्ञायक ही हूँ, ऐसा निर्णय कभी किया नहीं। सब बाहर में पर्याय ऊपर ही दृष्टि गई, द्रव्य को भूल गया है। द्रव्य क्या है उसे भूल गया है। बाहर सब भेद.. भेद.. भेद.. पर और विभाव पर ही दृष्टि गई है। अशुभमें-से शुभ में। ऐसे भेद पर ही दृष्टि रही है। इसलिये निश्चय का पक्ष कभी आया नहीं। द्रव्य को कभी पहचाना नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि गई ही नहीं। पर्याय को पहचानता हीं है लेकिन ऐसे भेद में और विभाव में रुक जाता है। द्रव्य जो अपना अस्तित्व उस द्रव्य को उसने पहचाना नहीं, द्रव्य पर दृष्टि गई ही नहीं। द्रव्य को पहचाना नहीं है। यदि सहीरूपसे द्रव्य को पहचाने तो पर्याय को भी पहचाने। लेकिन उसने सच्चे रूपसे कभी द्रव्य को पहचाना ही नहीं। निश्चय का पक्ष कभी आया ही नहीं। परिणति व्यवहार की हो रही है। भेद.. भेद.. भेद.. ऐसे परिणति व्यवहार की हो रही है। इसलिये वह भेद.. भेद में रुका है। इसलिये निश्चय का पक्ष यानी जो एकरूप आत्मा है कि जिसमें भेद नहीं है, एक अस्तित्व जो अपना अभेद है उसे ग्रहण किया नहीं है। यह भेदरूप परिणति हो रही है, अभेद की परिणति जो दृष्टि में आनी चाहिये, द्रव्य पर दृष्टि होनी चाहिये वह हुई नहीं, इसलिये उसका पक्ष कभी आया नहीं। पक्ष यानी एकान्त ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसे द्रव्य का पक्ष नहीं आया है, द्रव्य पर दृष्टि गई नहीं। इसलिये निश्चय का पक्ष आया नहीं। उसकी मुख्यता जो होनी चाहिये वह हुई नहीं।

मुमुक्षु :- सच्चे ज्ञानपूर्वक जो मुख्यता होनी चाहिये वह हुई नहीं।

समाधान :- हाँ, सच्चे ज्ञानपूर्वक जो मुख्यता होनी चाहिये वह हुई नहीं। फिर पर्याय का ज्ञान साथ में रहता है, लेकिन उसे द्रव्य की जो मुख्यता होनी चाहिये, द्रव्य पर दृष्टि देकर जो मुख्यता होनी चाहिये वह हुई नहीं। पर्याय की ही मुख्यता रही है।

मुमुक्षु :- सविकल्प निर्णय में हम इतना ले कि ज्ञायक आत्मा की मुख्यता उसे निरंतर रहती है।

समाधान :- हाँ, ज्ञायक की मुख्यता रहनी चाहिये। ज्ञायक की मुख्यता, पर्याय की गौणता। पर्याय नहीं है ऐसा नहीं, लेकिन उसकी गौणता।

मुमुक्षु :- सविकल्प निर्णयवाले को ऐसी स्थिति होती है कि उसे ज्ञायक की मुख्यता छूटती नहीं। तो उसका सविकल्प निर्णय सच्चा।

समाधान :- हाँ। निर्णय। लेकिन परिणति अभी बाकी रहती है।